चतुर्विंशति-जिन-स्तुति के प्रणेता चारित्रसुन्दरगणि ही हैं

म. विनयसागर

बचपना, बचपना ही होता है । इसमें भी बालहठ हो तो उसका तो कहना ही क्या ? बाल्यावस्था में बालहठ इस बात का हुआ कि पुस्तकों पर सम्पादक के नाम पर मेरा नाम होना चाहिए ! ज्ञान कुछ भी नहीं था । न व्याकरण का ज्ञान था, न साहित्य का और न ही सम्पादन का, था तो सिर्फ हठ था । उस समय मैं सिद्धान्तकौमुदी पढ़ रहा था । ज्ञान नाम की कोई वस्तु नहीं थी । अवस्था १६-१७ वर्ष की थी ।

हाँ, इतः पूर्व संवत् २०४२-४३ में श्री नाहटा-बन्धुओ के सम्पर्क में रहकर हस्तलिखित ग्रन्थों की लिपी पढ़ने और मूर्तिस्थ लेखों की लिपी पढ़ने का अभ्यास जरूर हो गया था । साथ ही हस्तलिखित ग्रन्थों के संग्रह का भी लोभ पैदा हो गया था । इसी कारण खोज करते हुए मुझे तीन हस्तलिखित ग्रन्थों की प्रतियाँ प्राप्त हुई जो कि अप्रसिद्ध थी । जिनके नाम इस प्रकार हैं :- श्रीसुन्दर रचित चतुर्विंशति-जिन-स्तुतयः, पुण्यशील गणि रचित चतुर्विंशति-जिनेन्द्र-स्तवनानि और पद्मराजगणि रचित भावारिवारण-पादपूर्ति-स्तोत्रम् । बालहठ के कारण इन ग्रन्थों का सम्पादन प्रारम्भ किया, जबकि मुझे पदच्छेद इत्यादि का भी ज्ञान नहीं था । तीनों लघु पुस्तिकाएँ प्रकाशित हुई, तो आत्मसन्तुष्टि हुई कि मैं सम्पादक बन गया । जब ये पुस्तकें संशोधन के लिए स्वर्गीय गणिवर्य पूज्य श्री बुद्धिमुनिजी महाराज को भेजी गई तो उन्होंने संशोधित कर मुझे वापिस भिजवाई । अशुद्धियों का बाहुल्य देखकर मैं हताश हो गया, किन्तु फिर भी प्रयत्न चालू रहा ।

श्रीसुन्दर रचित चतुर्विंशति-जिन-स्तुतयः की हस्तलिखित प्रति श्रीवल्लभगणि लिखित थी और वह संस्कृत अवचूरि के साथ थी । ग्रन्थकार के नाम के आगे श्रीसुन्दरगणि लिखित था । यह श्रीसुन्दरगणि कौन थे, ज्ञात नहीं । इस पुस्तक की भूमिका स्व. श्री अगरचन्दजी नाहटा ने सप्रेम लिखी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थी । इसमें उन्होंने अन्य कृति न मिलने के कारण श्रीसुन्दर की ही कृति माना और युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि की शिष्य परम्परा में स्वीकार कर प्रतिपादन भी कर दिया ।

श्रीवल्लभगणि लिखित प्रति की लेखन पुष्पिका इस प्रकार है :-

''इति श्रीसुन्दरः-पण्डितप्रकाण्ड श्रीसुन्दरमुनिविरचित श्रीमत् चतुर्विंशति-जिनाधिपति-स्तुति-वृत्तिः समाप्ता ॥ लिखिता पं. श्रीवल्लभ-गणिना ॥श्रीः॥''

इस यमकमय स्तुति का आद्यन्त इस प्रकार है :-

युगादिदेव स्तुतिः ।

नित्यानन्तमयं स्तुवे तमनघं श्रीनाभिसूनुं जिनं,
विश्वेशं कलयामलं पर-महं मोदात्तमस्तापदम् ।
नित्यं सुन्दरभावभावितधियो ध्यायन्ति यं योगिनो,
विश्वेऽशंकलयामलं परमहं मोदात्त-मस्तापदम् ॥१॥

x x x

श्रीवीर-जिनस्तुतिः ।

वीरस्वामिन् ! भवन्तं कृतसुकृततर्ति हेमगौराङ्गभासं,
ये मंदन्ते समानन्दितभविकमलं नाथ ! सिद्धार्थजातम् ।
संसारे दुःखमस्मिन् जितरिपुनिकरा संश्रयन्ते घनापा-
येऽमन्दं ते समानं दितभाविकम-लं नाथ सिद्धार्थजातम् ॥१॥

लेखन पुष्पिका में श्रीसुन्दरमुनि विरचित ही लिखा है और लेखन में अपना नाम श्रीवल्लभगणि लिखा है । श्रीवल्लभगणि श्रीज्ञानविमलोपाध्याय के शिष्य हैं और इन्हें संवत् १६५४ के पूर्व ही गणिपद प्राप्त हो चुका था, अतएव यह संवत् १६५४ के पश्चात् की ही लेखन प्रशस्ति है ।

समय का प्रवाह अबाध गति से चलता रहा । इस वर्ष मुनिश्री सुयशचन्द्रविजयजी ने संकेत किया कि इस कृति के कर्ता चारित्रसुन्दरगणि हैं, प्रति प्राप्त हुई है । इसकी फोटोकॉपी भी इन्होंने भेजी । पुस्तक का आद्यन्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवलोकन करने पर भी मूल में ग्रन्थकार का नाम प्राप्त न हो सका। किन्तु वीरजिनस्तुति के चतुर्थ पद्य में 'सुन्दराचारसारा' शब्द प्राप्त होता है। इसमें प्रयुक्त 'आचार' शब्द से चरित्र ग्रहण करने पर और सुन्दर शब्द चारित्र के बाद ग्रहण करने पर चारित्रसुन्दर सिद्ध होता है।

मुनिश्री सुयशचन्द्रविजयजी को प्राप्त प्रति १६वीं सदि की लिखित है। अवचूरि सहित है। लेखन संवत् नहीं दिया है। पत्र संख्या ७ है, पंचपाठ है किन्तु कई पत्र अग्निभक्षित हैं और किनारे भी खण्डित है। लेखन पुष्पिका का प्रकार दी गई है :-

''इति श्री बृहद्तपोगच्छनायक भट्टा. श्रीरत्नसिंहसूरि शिष्योपा. श्री चारित्रसुन्दरगणिविरचिताः सुन्दरस्तुतयः सम्पूर्णा। ग्रन्थाग्रन्थ १९६ श्लोकः ॥छा। ग्रन्था ५२७ सर्व'' इसमें स्पष्टतः उपाध्याय श्री चारित्रसुन्दरगणि विरचित लिखा गया है। किन्तु, अवचूरि के अन्त में ''सुन्दरस्तुत्यवचूरिः'' ऐसा लिखा है। इसमें श्रीसुन्दर शब्द ही लिखा गया होगा। ऐसा सम्भव है कि श्रीवल्लभोपाध्याय ने अपने नाम के समान ही 'श्री' दीक्षानाम और 'सुन्दर' नन्दीपद के समान ही इसके कर्त्ता भी श्रीसुन्दर माना हों। इसीलिए श्रीवल्लभ ने 'श्रीसुन्दर' कृत ही लिखा है। अन्य किसी भी स्थान पर यह नाम भी प्राप्त नहीं होता है।

इसकी सोलहवीं सदी की एक प्रति मुझे प्राप्त हुई है जो कि मूल गात्र है। इसमें स्पष्टतः चारित्रसुन्दरगणि रचित लिखा है। इससे स्पष्ट होता है कि यमकबद्ध स्तुति चारित्रसुन्दरगणि की ही है। मूल पाठ ही है, इसमें अवचूरि नहीं दी गई है। सम्भवतः यह अवचूरि स्वोपज्ञ ही हो। श्री चारित्रसुन्दरगणि बृहत् तपागच्छीय रत्नसिंहसूरि के शिष्य थे। जिन्होंने कि संवत् १८४७ में शीलदूत नामक काव्य की रचना की थी। आचारोपदेश आदि भी प्राप्त हैं।

अतएव यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है कि इस कृति के कर्त्ता चारित्रसुन्दरगणि तपागच्छीय है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org